पाठ्यक्रम - १०

१०.अ सृष्टि का उत्थान-पतन : काल परिवर्तन

मनुष्यादि प्राणियों को किसने बनाया ? ये कब से हैं और कब तक रहेंगे ? इत्यादि प्रश्नों के समाधान हेतु अनेक दर्शन व मत हमारे सामने हैं। कुछ दर्शनकार कहते हैं ब्रह्मा नाम वाले ईश्वर ने मनुष्यादि प्राणियों की रचना की। कुछ कहते हैं पृथ्वी आदि पंचभूतों से मिलकर जीव की रचना होती है और पंचभूतों के पृथक् - पृथक् होने पर जीव नष्ट हो जाता है। कुछ वैज्ञानिक मनुष्य को बंदर का ही सुधरा हुआ रूप मानते हैं अर्थात् लाखों वर्ष पूर्व मनुष्य बंदर ही था धीरे-धीरे वह मनुष्य बन गया। उपरोक्त मान्यताएं अज्ञानियों द्वारा प्रचलित होने से असत्य ही हैं। वास्तव में सृष्टि के सभी प्राणी अनादि काल से हैं और आगे अनन्त काल तक रहेंगे, उन्हें कोई बना नहीं सकता और न ही कोई नष्ट कर सकता है। क्योंकि सत्ता का कभी उत्पादन तथा नाश नहीं होता। मनुष्यादि पर्याए हैं, जो बदलती रहती हैं जैसे मनुष्य मर कर बंदर हो सकता है, हाथी हो सकता है, बंदर मरकर मनुष्य हो सकता है इत्यादि। कालक्रम के परिवर्तन के अनुसार उनकी उम्र, लंबाई, चौड़ाई, आहारादि में परिवर्तन देखा जाता है।

भरत और ऐरावत क्षेत्र में काल-परिवर्तन उत्सर्पिणी काल एवं अवसर्पिणी काल के रूप में होता है। जिसमें जीवों की आयु, बल, बुद्धि तथा शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से वृद्धि होती रहे उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं। इसके छह भेद हैं- १. दुषमा-दुषमा काल, २. दुषमा काल, ३. दुषमा-सुखमा काल, ४. सुषमा-दुषमा काल, ५. सुषमा काल, ६. सुषमा-सुषमा काल। जिसमें जीवों की आयु, बल, बुद्धि और शरीर की अवगाहना आदि में क्रम से हानि होती रहे वह अवसर्पिणी काल है। इसके छह भेद हैं-

१. सुषमा-सुषमा काल, २. सुषमा काल ३. सुषमा-दुषमा काल
४. दुषमा-सुषमा काल ५. दुषमा काल ६. दुषमा - दुषमा काल।

दस कोड़ा - कोड़ी सागर का उत्सर्पिणी और इतने ही वर्षों का अवसर्पिणी काल होता है। दोनों ही मिलकर बीस कोड़ा-कोड़ी सागर का एक कल्प काल होता है। वर्तमान में जहाँ हम रह रहे हैं वह भरत क्षेत्र है यहाँ पर अभी अवसर्पिणी काल चल रहा है। यहाँ पर हुए/ हो रहे परिवर्तन को हम केवली भगवान द्वारा कहे गए वचनों के अनुसार समझने का प्रयास करेंगे।

सुषमा - सुषमा काल

अवसर्पिणी का यह प्रथम काल है, इस काल में सुख ही सुख होता है यह काल भोग प्रधान होता है, इसे उत्कृष्ट भोग-भूमि का काल भी कहते हैं।

० नर-नारी युगल (जोड़े के) के रूप में जन्म लेते हैं। इस युगल के जन्म लेते ही पुरुष (पिता) को छींक एवं स्त्री (माता) को जंभाई आती है। जिससे दोनों का मरण हो जाता है एवं शरीर कर्पूरवत् उड़ जाता है।

० जन्म लेने वाले युगल शिशुओं का शय्या में अगूंठा चूसते तीन दिन, उपवेशन (बैठना सीखने) में तीन दिन, अस्थिर गमन में तीन दिन, स्थिर गमन में तीन दिन, कला गुण प्राप्ति में तीन दिन, तारुण्य में तीन दिन और सम्यक् ग्रहण की योग्यता में तीन दिन इस प्रकार कुल इक्कीस(२१) दिनों का काल जन्म से पूर्ण वृद्धि होते हुए व्यतीत होता है। इनका व्यवहार आपस में पति-पत्नी के समान ही होता है।

० मनुष्य अक्षर, गणित, चित्र, शिल्पादि चौसठ कलाओं में स्वभाव से ही अतिशय निपुण होते हैं। मनुष्यों में नौ हजार हाथियों के बराबर बल पाया जाता है। इनका अकाल मरण नहीं होता है। ये विक्रिया से अनेक रूप बना सकते हैं। मनुष्यों के शरीर की ऊँचाई ६००० धनुष प्रमाण होती है, शरीर स्वर्ण के समान कांतिवाला, मल-मूत्रादि से रहित होता है। सभी मनुष्य एवं तिर्यञ्चों का शरीर समचतुरस्त्र संस्थान वाला एवं वज्रवृषभ नाराच संहनन वाला होता है। इस काल के जीव अत्यन्त अल्पाहारी होते हैं। तीन दिन के अनशन के बाद चौथे दिन हरड़ अथवा बेर के बराबर आहार ग्रहण करते हैं। इन जीवों की उत्कृष्ट आयु

तीन पल्य (असंख्यात वर्ष) प्रमाण होती है।

इस प्रकार की स्थिति वाला चार कोड़ा - कोड़ी सागर प्रमाण यह प्रथमकाल व्यतीत होता है इसके बाद अवसर्पिणी का द्वितीय काल प्रारम्भ होता है।

सुषमा - काल

प्रथम काल की अपेक्षा इस काल में सुख, आयु, शक्ति, अवगाहना आदि की हीनता पाई जाती है इसे मध्यम भोग-भूमि का काल माना गया है।

1. इस काल में उत्पन्न युगलों का पाँच-पाँच दिन अँगूठा चूसने आदि में व्यतीत होने पर कुल पैंतीस (३५) दिन पूर्ण वृद्धि होने में लगता है। मनुष्यों की उत्कृष्ट ऊँचाई घटकर चार हजार धनुष प्रमाण ही बचती है। शरीर का वर्ण शंख के समान श्वेत होता है एवं उत्कृष्ट आयु दो पल्य प्रमाण होती है।
2. इस काल में जीव दो दिन के बाद बहेड़ा के बराबर आहार ग्रहण करते हैं यह आहार अमृतमय होता है।

इस प्रकार तीन कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण वाला द्वितीय काल व्यतीत होता है। उत्सेध आदि के क्षीण होते-होते तीसरा सुषमा-दुषमा काल प्रवेश करता है।

सुषमा - दुषमा काल

द्वितीय काल की अपेक्षा इस काल में सुख आदि की हीनता पाई जाती है इसे जघन्य भोग भूमि का काल कहा जाता है।

1. इस काल में उत्पन्न युगल सात-सात दिन उपवेशन आदि क्रिया में व्यतीत करते हुए उनचास (४९) दिन में पूर्ण युवास्था को प्राप्त हो जाते हैं। मनुष्य के शरीर की ऊँचाई २००० धनुष प्रमाण तथा शरीर नील कमल के समान वर्ण वाला होता है।
2. मनुष्यों एवं तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु १ पल्य एवं आहार एक दिन के बाद आँवले के बराबर होता है।
3. कुछ कम पल्य के आठवें भाग प्रमाण तृतीय काल के शेष रहने पर प्रथम कुलकर उत्पन्न होता है फिर क्रमशः चौदह कुलकर उत्पन्न होते हैं। जिनके द्वारा कर्मभूमि की व्यवस्था की जाती है। इस काल का शेष वर्णन प्रथम-द्वितीय काल के सदृश्य ही जानना चाहिए।

इस प्रकार दो कोड़ा-कोड़ी सागर वाला तृतीय काल व्यतीत होने पर सम्पूर्ण लोक प्रसिद्ध त्रेसठ शलाका पुरुषों के जन्म योग्य चतुर्थ काल प्रवेश करता है।

दुषमा - सुषमा काल

काल के ह्रास क्रम से भोग भूमि का समापन तथा कर्म भूमि का प्रारंभ इस दुषमा-सुषमा काल से हो जाता है इस काल में विशेष रूप से निम्न परिवर्तन देखा जाता है -

1. यह काल कर्म प्रधान होता है। कल्पवृक्ष समाप्त हो जाते हैं, असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य इन षट् कर्मों के द्वारा मनुष्य अपनी आजीविका चलाते हैं। सामाजिक व्यवस्थाएं विवाह संस्कार आदि प्रारंभ हो जाते हैं।
2. बालक-बालिकाओं का पृथक्-पृथक् जन्म होने लगता है, माता-पिता उनका पालन-पोषण करते हैं। यथायोग्य काल में बच्चे वृद्धि को प्राप्त होते हैं। उनका व्यवहार आपस में भाई-बहन के समान होता है।
3. सभी शलाका पुरुष (तीर्थङ्कर आदि) एवं महापुरुष (कामदेव आदि) इसी काल में उत्पन्न होते हैं।
4. मनुष्यों के शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई पाँच सौ अथवा पाँच सौ पच्चीस धनुष प्रमाण होती है। मनुष्य प्रतिदिन कवलाहार करते हैं, इस काल में मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि की होती है।
5. दुःख की अधिकता और सुख की अल्पता के कारण यह काल दुषमा-सुषमा कहलाता है।
6. इस प्रकार ब्यालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ा-कोड़ी सागर प्रमाण वाला यह चतुर्थ काल व्यतीत होता है। इसके बाद आयु, शक्ति, बुद्धि आदि की हानि के क्रम से पंचम दुषमा काल प्रारंभ होता है।

दुषमा काल

भगवान महावीर के मोक्षगमन के पश्चात् तीन वर्ष आठ माह पंद्रह दिन पूर्ण होने पर दुषमा नामक पंचमकाल प्रवेश करता है इस काल में प्रायः दुःख ही मिलता है। अभी हुण्डा अवर्पिणी काल का पाँचवाँ दुषमा काल चल रहा है। इस काल में

निम्नलिखित परिवर्तन होते हैं।

1. इस काल में मनुष्य हीन संहनन धारी, मंद बुद्धि एवं वक्र (कुटिल) परिणामी होवेंगे। मनुष्यों की उत्कृष्ट आयु एक सौ बीस वर्ष एवं शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई सात हाथ होगी।

2. अंतिम कल्की द्वारा मुनिराज से शुल्क स्वरूप आहार के समय प्रथम ग्रास मांगने पर अन्तराय करके तथा पंचमकाल का अन्त आने वाला है ऐसा जानकर वे मुनिराज सल्लेखना ग्रहण करेंगे। उस समय वीरागंज नामक मुनि, सर्वश्री नामक आर्यिका तथा अग्निदत्त एवं पंगुश्री नामक श्रावक-श्राविका होंगे। ये चारों ही सल्लेखना धारण कर स्वर्ग में देव होंगे। उस दिन क्रोध को प्राप्त हो असुर देव कल्की को मार देता है, सूर्यास्त के समय अग्नि नष्ट हो जावेंगी। अर्थात् पूर्वाह्ण में धर्म का नाश, मध्याह्ण में राजा का नाश एवं अपराह्ण में अग्नि नष्ट हो जाती है। इस प्रकार धर्म के पूर्ण नाश के साथ ही २१ हजार वर्ष प्रमाण वाला यह पंचम काल समाप्त हो जाएगा। इसके पश्चात् अत्यन्त दु:ख पूर्ण छटवाँ दुषमा-दुषमा काल प्रारंभ होएगा।

दुषमा-दुषमा काल

पंचम काल के व्यतीत होने पर अत्यन्त दु:खप्रद, नरक तुल्य, छटवाँ काल प्रारंभ होवेगा। इस काल में मनुष्यों की निम्नलिखित स्थिती होएँगी।

1. मनुष्य धर्म-कर्म से भ्रष्ट, पशुवत् आचरण करने वाले होवेंगे। वे नग्न रहेंगे और वनों में विचरण करेंगे। बंदर- जैसे रूप वाले, कुबड़े, काने, दरिद्र, अनेक रोगों से सहित, अति कषाय युक्त, दुर्गन्धित शरीर वाले होंगे।

2. इनके शरीर का वर्ण धूम्र के समान काला होगा एवं शरीर की ऊँचाई उत्कृष्ट तीन हाथ एवं कम होते-होते एक हाथ हो जाएगी। आयु अधिकतम बीस वर्ष होएगी। इस काल में मनुष्य नरक और तिर्यञ्च गति से ही आकर पश्चात् मरकर वही पहुचेंगे।

इस प्रकार धर्म-कर्म एवं मानवीय सभ्यता का ह्रास होते-होते जब इस छटवे काल के मात्र ४९ दिन शेष बचेंगे तब जन्तुओं को भयदायक घोर प्रलय होगा। यहीं पर अवसर्पिणी काल का अन्त हो जाएगा। इसके पश्चात् उत्सर्पिणी काल का प्रारंभ होता है।

विशाल अवगाहना के प्रमाण

पूर्व काल में मनुष्य एवं तिर्यञ्चों की विशाल अवगाहना की सिद्धि हेतु कुछ तर्क व प्रमाण इस प्रकार हैं।

1. राष्ट्रीय समुद्र विज्ञान संस्थान के पुरातत्त्व विभाग की खोज के अनुसार समुद्र में डूबी द्वारिका के मकानों की ऊँचाई २०० से ६०० मीटर तक है एवं इनके कमरों के दरवाजे ३० मीटर (लगभग १०० फुट) ऊँचे हैं। इससे सिद्ध होता है कि उसमें रहने वाले मनुष्य ५०-६० फुट ऊँचे होंगे ही, जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान नेमिनाथ की अवगाहना १० धनुष = ६० फीट थी।

2. ज्ञात जानकारी के अनुसार मास्कों के म्यूजियम में २-३ लाख वर्ष पुराना नरकंकाल रखा है जिसकी ऊँचाई २३ फुट है एवं बड़ोदा (गुजरात) के म्यूजियम में एक छिपकली का अस्थिपंजर रखा है जो १०-१२ फीट लम्बा है।

3. फ्लोरिडा में दस लाख वर्ष पुराना एक बिल्ली का धड़ मिला है जिसमें बिल्ली के दाँत सात इंच लम्बे हैं।

4. रोम के पास कैसल दी गुड्डों में तीन लाख साल पुरानी हाथियों की हड्डी मिली है। इनमें से कुछ हाथी दाँत १० फुट की लंबाई के हैं। अत: विचारणीय है कि जब हाथी का दाँत 10 फुट लम्बा तो हाथी कितना लंबा हो सकता है।

विशेष जानकारी हेतु गूगल पर 'स्केलेटन' सर्च करें।

पात्र के भेद

पात्र के तीन भेद हैं- १. सुपात्र २. कुपात्र ३. अपात्र

सुपात्र - सम्यग्दर्शन एवं व्रतों से सहित।

कुपात्र - सम्यग्दर्शन से रहित एवं व्रतों से सहित।

अपात्र - सम्यग्दर्शन एवं व्रतों से रहित।

सुपात्र के तीन भेद हैं -

उत्तम सुपात्र - भावलिंग-द्रव्यलिंग से सहित रत्नत्रयधारी मुनि।

मध्यम सुपात्र - सम्यक्त्व सहित प्रतिमाधारी श्रावक, आर्यिका।

जघन्य सुपात्र - सम्यक्त्व सहित अव्रती श्रावक।

''प्रत्येक व्यवधान का
सावधान हो कर
सामना करना
नूतन अवधान को पाना है
या यूँ कहें इसे -
अन्तिम समाधान को पाना है।'' (पृ. ७४)

पाठ्यक्रम - १०

१०.ब जैनाचार (रात्रि भोजन त्याग एवं जल गालन)

जैन श्रावक की पहचान के तीन चिह्न कहे गए हैं। उसमें सर्वप्रथम प्रतिदिन देव दर्शन, दूसरा रात्रि भोजन त्याग और तीसरा छान कर पानी पीना है।

रात्रि भोजन त्याग का अर्थ - सूर्य अस्त होने के पश्चात् चारों प्रकार के आहार (भोजन) का त्याग करना है।

वे चार प्रकार के आहार- १. खाद्य - दाल, रोटी, भात आदि।
२. स्वाद - इलायची, लौंग, सौंफ आदि।
३. लेय - रबड़ी, लपसी, दही आदि।
४. पेय - जल, रस, दूध आदि।

जो श्रावक रात्रि में चारों प्रकार के आहार का त्याग करता है उसे एक वर्ष में छह महीने के उपवास का फल मिलता है।

दिन का बना भोजन रात में करने से अथवा रात में बना भोजन रात में करने से रात्रि भोजन का दोष तो लगता ही है किन्तु रात में बना भोजन दिन में करने से भी रात्रि भोजन का दोष लगता है।

वैज्ञानिकों के अनुसार- सूर्य के प्रकाश में अल्ट्रावायलेट और इन्फ्रारेड नाम की अदृश्य किरणें होती हैं। इन किरणों के धरती पर पड़ते ही अनेक सूक्ष्म जीव यहाँ - वहाँ भाग जाते हैं अथवा उत्पन्न ही नहीं होते, किन्तु सूर्य अस्त होते ही वे कीटाणु बाहर निकल आते हैं, उत्पन्न हो जाते हैं। रात्रि में भोजन करने पर वे असंख्यात सूक्ष्म त्रस जीव जो भोजन में मिल गए थे मरण को प्राप्त हो जाते हैं अथवा पेट में पहुँचकर अनेक रोगों को जन्म देते हैं। चिकित्सा शास्त्रियों का अभिमत है कि कम से कम सोने से तीन घंटे पूर्व तक भोजन कर लेना चाहिए। रात्रि में भोजन करते समय यदि चींटी पेट में चली जाए तो बुद्धि नष्ट हो जाती है, जुँओं से जलोदर रोग उत्पन्न हो जाता हैं, मक्खी से वमन हो जाता है, मकड़ी से कुष्ट रोग उत्पन्न हो जाता है तथा बाल गले में जाने से स्वर भंग एवं कंटक आदि से कण्ठ में (गले में)पीड़ा आदि अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अत: स्वास्थ्य की रक्षा हेतु भी रात्रि भोजन का त्याग अनिवार्य है।

धार्मिक दृष्टिकोण-रात्रि में बल्ब आदि का प्रकाश होने पर भी जीव हिंसा के दोष से बच नहीं सकते, बरसात के दिनों में साक्षात् देखने में आता है कि रात्रि में बल्व जलाते ही सैकड़ों कीट - पंतगे उत्पन्न हो जाते हैं, जो कि दिन में बल्व (लट्टू)जलाने पर उत्पन्न नहीं होते। सूक्ष्म जीव तो देखने में ही नहीं आते। तथा रात्रि के अंधकार में भोजन करने पर सैकड़ों जीवों का घात होना संभव हैं अत: धर्म, स्वास्थ्य तथा कुल परम्परा की रक्षा हेतु रात्रि भोजन का त्याग नियम से करना चाहिए।

रात्रि भोजन से उत्पन्न पाप के फलस्वरूप जीव उल्लू, कौआ, बिलाव, गिद्ध पक्षी, सूकर, गोह आदि अत्यन्त पाप रूप अवस्था दुर्गति को प्राप्त होता है तथा मनुष्य अत्यन्त विद्रूप शरीर वाला, विकलांग, अल्पायु वाला और रोगी होता है एवं भाग्य हीन, आदर हीन होता हुआ नीच कुलों में उत्पन्न होकर अनेक दु:खों को भोगता है।

जल गालन- जल स्वयं जलकायिक एकेन्द्रिय जीव है एवं उस जल में अनेक त्रस जीव पाए जाते हैं। वे इतने सूक्ष्म होते हैं कि नग्न आँखों से दिखाई नहीं पड़ते। वैज्ञानिकों ने सूक्ष्मदर्शी यंत्रों की सहायता से देखकर एक बूंद जल में 36,450 जीव बताए हैं। जैन ग्रंथों के अनुसार उक्त जीवों की संख्या काफी अधिक (असंख्यात) है। ऐसा कहा जाता है कि एक जल की बूंद में इतने जीव पाए जाते हैं कि वे यदि कबूतर की तरह उड़ें तो पूरे जम्बूद्वीप को व्याप्त कर लें। उक्त जीवों के बचाव के लिए पानी छानकर ही पीना चाहिए।

जल को अत्यन्त गाढ़े (जिससे सूर्य का विम्ब न दिखे) वस्त्र को दुहरा करके छानना चाहिए। छन्ने की लंबाई, चौड़ाई से डेढ़ गुनी होनी चाहिए।

छना हुआ जल एक मुहूर्त (४८ मिनट) तक, सामान्य गर्म जल छह (६) घंटे तक तथा पूर्णत: उबला जल चौबीस (२४) घंटे तक उपयोग करना चाहिए। इसके बाद उसमें त्रस जीवों की पुन: उत्पत्ति की संभावना रहने से उनकी हिंसा का दोष

लगता हैं।

छने हुए जल में लौंग, इलायची आदि पर्याप्त मात्रा में (जिससे पानी का स्वाद व रंग परिवर्तित हो जाए) डालने पर वह पानी प्रासुक हो जाता है एवं उसकी मर्यादा छह घंटे की मानी गई हैं।

श्री सरस्वती नाम स्तोत्रम्

सरस्वत्याः प्रसादेन, काव्य कुर्वन्ति मानवाः।
तस्मान्निश्चल भावेन, पूजनीया सरस्वती ॥ 1॥

अर्थ : (सरस्वत्याः) सरस्वती देवी की **(प्रसादेन)** कृपा से **(मानवाः)** विद्वान जन **(काव्यं)** काव्य रचना **(कुर्वन्ति)** करते हैं **(तस्मात्)** इसलिए **(निश्चल-भावेन)** अटल भक्तिभाव से **(सरस्वती)** सरस्वती देवी **(पूजनीया)** पूज्यनीय है।

श्री सर्वज्ञ मुखोत्पन्ना, भारती बहुभाषणी।
अज्ञान तिमिरं हन्ति, विद्या बहु विकासनी ॥ 2॥

अर्थ : (श्रीसर्वज्ञ-मुखोत्पन्ना) श्री सर्वज्ञ प्रभु के मुख कमल से उत्पन्न **(बहुभाषिणी)** अनेक भाषारूप **(विद्या-बहु-विकासिनी)** अनेक विद्याओं को प्रकट करने वाली **(भारती)** ऐसी सरस्वती देवी **(अज्ञानतिमिरं)** अज्ञानरूपी अन्धकार को **(हन्ति)** नाश करती है।

सरस्वतीमया दृष्टा, दिव्या कमललोचना।
हंसस्कन्ध समारूढ़ा, वीणा पुस्तक धारिणी ॥ 3॥

अर्थ : (दिव्या) मनोहर **(कमल-लोचना)** कमल के समान सुन्दर दो नेत्रों वाली अर्थात् दो नयों वाली **(हंसस्कन्ध-समारूढा)** हंस के शरीर पर सवारी करने वाली अर्थात् भेदविज्ञानी आत्मा के ऊपर विराजमान **(वीणा-पुस्तक-धारिणी)** दिव्यध्वनिरूपी वीणा और आगमरूपी पुस्तक को कर कमलों में धारण करने वाली **(सरस्वती-मया दृष्टा)** सरस्वती देवी का मैंने दर्शन किया।

प्रथमं भारती नाम, द्वितीय च सरस्वती।
तृतीयं शारदा देवी, चतुर्थ हंसगामिनी ॥ 4॥

अर्थ : सरस्वती देवी का **(प्रथमं भारती नाम)** पहला नाम भारती **(द्वितीयं सरस्वती)** दूसरा सरस्वती **(तृतीयं शारदादेवी)** तीसरा शारदादेवी **(च)** और **(चतुर्थ हंसगामिनी)** चौथा हंसगामिनी (क्षीर-नीर-विवेकशीला) है।

पंचमं विदुषांमाता, पष्ठं वागीश्वरि तथा।
कुमारी सप्तमं प्रोक्तं, अष्टमं ब्रह्मचारिणी ॥ 5॥

अर्थ : (पंचम विदुषां माता) पाँचवाँ विद्वानों की माता **(षष्ठं वागीश्वरी)** छठवाँ नाम वागीश्वरी **(सप्तमं कुमारी)** सातवाँ कुमारी **(तथा)** और **(अष्टमं ब्रह्मचारिणी)** आठवाँ नाम ब्रह्मचारिणी **(प्रोक्तं)** कहा गया है।

नवमं च जगन्माता, दशमं ब्राह्मिणी तथा।
एकादशं तु ब्रह्माणी, द्वादशं वरदा भवेत् ॥ 6॥

अर्थ : (नवमं जगन्माता) नवाँ जगत की माता/जगदम्बा माता **(च)** और **(दशमं ब्राह्मिणी)** दशवाँ ब्राह्मिणी **(तथा)** तथा **(एकादशं ब्रह्माणी)** ग्यारहवाँ ब्रह्माणी **(तु)** और **(द्वादशं वरदा)** बारहवाँ नाम वरदा/वरदान देने वाली **(भवेत्)** है।

वाणी त्रयोदशं नाम, भाषाचैव चतुर्दशं।
पंचदशं च श्रुतदेवी, षोडशं गौर्निगद्यते ॥ 7॥

अर्थ : (त्रयोदशं नाम वाणी) तेरहवाँ नाम वाणी **(चतुर्दशं भाषा)** चौदहवाँ भाषा **(च)** और **(पंचदशंश्रुतदेवी)** पंद्रहवाँ श्रुतदेवी **(षोडशं गौः)** सोलहवाँ नाम गौ **(निगद्यते)** कहा गया है **(एव)** वास्तव में ये सोलह सरस्वती देवी के नाम हैं।

एतानि श्रुतनामानि, प्रातरुत्थाय यः पठेत्।
तस्य संतुष्यति माता, शारदा वरदा भवेत् ॥ 8॥

अर्थ : (यः) जो भव्यपुरुष **(प्रातः उत्थाय)** प्रातःकाल उठकर **(एतानि)** इन **(श्रुतनामानि)** जिनशास्त्र/सरस्वती के नामों को **(पठेत्)** पढ़ता है **(तस्य)** उस पर **(माता शारदा)** जिनवाणी/सरस्वती माता **(संतुष्यति)** प्रसन्न होती है और **(वरदा)** वर प्रदान करने वाली **(भवेत्)** होती है।

सरस्वति नमस्तुभ्यं, वरदे काम रूपिणी।
विद्यारंभं करिष्यामि, सिद्धिर्भवतु मे सदा ॥ 9॥

अर्थ : (वरदे!) हे वरदायिनी! **(काम-रूपिणी)** इच्छित रूप को धारण करने वाली **(सरस्वति!)** हे सरस्वती! **(तुभ्यं)** तेरे लिए **(नमः)** नमस्कार हो **(विद्यारंभं)** मैं विद्या का प्रारम्भ **(करिष्यामि)** करूँगा **(मे)** मुझे विद्या प्राप्ति में **(सदा)** हमेशा **(सिद्धिः)** सिद्धि/सफलता/समृद्धि **(भवतु)** हो।

पाठ्यक्रम - १०

१०.स हमारे पथ प्रदर्शक : आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी

दिगम्बर आम्नाय के प्रधान आचार्य, कलिकाल सर्वज्ञ, परम आध्यात्मिक संत कुन्दकुन्द स्वामी हुए जिनके विषय में विद्वानों ने सर्वाधिक खोज की, जिनमें मुख्य विवरण इस प्रकार है :-

१. आप द्रविड़ देशस्थ कौण्डकुण्डपुर ग्राम के निवासी थे इस कारण कोण्डकुण्ड अथवा कुन्दकुन्द नाम से प्रसिद्ध हुए।

२. कुन्दकुन्दाचार्य के अन्य चार नाम पद्मनन्दि, वक्रग्रीवाचार्य, ऐलाचार्य व गृद्धपिच्छाचार्य थे।

३. आचार्य कुन्दकुन्द का काल लगभग अठारह सौ वर्ष (१८००) पूर्व विक्रम संवत् १३८ - २२२ के मध्य माना गया है।

४. आप श्री जिनचन्द्र के शिष्य तथा उमास्वामी के गुरु थे।

५. आचार्य कुन्दकुन्द के पास चारण ऋद्धि थी। वे धरती से चार अंगुल ऊपर गमन करते थे तथा उन्होंने विदेह क्षेत्र स्थित सीमंधर केवली (तीर्थङ्कर) की साक्षात् वंदना की व उपदेश सुने।

६. विदेह क्षेत्र से लौटते हुए आचार्य श्री की पिच्छिका मार्ग में ही गिर पड़ी तब उन्होंने गृद्ध पक्षी के पंखों की पिच्छिका धारण की। तबसे आप गृद्धपिच्छिकाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए।

७. विदेह क्षेत्र से लौट आने पर आचार्य महोदय सिद्धान्त के अध्ययन में, लेखन में इतने तन्मय हो गए कि उन्हें अपने शरीर का भी ध्यान नहीं रहा। गर्दन झुकाए हुए अध्ययन की उत्कटता के कारण उनकी गर्दन टेढ़ी पड़ गई और लोग उन्हें वक्रग्रीवाचार्य के नाम से संबोधित करने लगे। जब उन्हें अपनी इस अवस्था का ज्ञान हुआ तब अपने योग साधना के द्वारा उन्होंने अपनी ग्रीवा ठीक कर ली थी।

८. आचार्य कुन्दकुन्द ने चौरासी पाहुड की रचना की थी, जिनमें बारह उपलब्ध हैं। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पञ्चास्तिकाय, दर्शन पाहुड़ आदि से सहित अष्टपाहुड़, बारसाणुवेक्खा, सिद्ध, सुद, आइरिय, जोई, णिव्वाण, पंचगुरु और तित्थयर भक्ति ये सभी प्राकृत भाषा की रचनाएँ हैं एवं षट्खण्डागम ग्रन्थ पर परिकर्म नाम से बारह हजार श्लोक प्रमाण व्याख्या लिखी गई जो अनुपलब्ध है।

९. प्राकृत भाषा के अतिरिक्त तमिल भाषा पर भी आचार्य श्री का अधिकार था। तमिल भाषा में आपकी सर्वमान्य रचना ''कुरल काव्य'' के नाम से प्रसिद्ध है यह अध्यात्म, नीति का सुंदर ग्रन्थ है। दक्षिण देश में यह तमिल वेद के नाम से प्रसिद्ध है।

१०. एक बार कुन्दकुन्दाचार्य अपने विशाल संघ (५९४ साधु) सहित गिरनार यात्रा को पहुंचे। उसी समय शुक्लाचार्य के नेतृत्व में श्वेताम्बर संघ भी पहुँचा। श्वेताम्बर आचार्य अपने को प्राचीन मानते थे और चाहते थे कि पहले हमारा संघ यात्रा करे। शास्त्रार्थ के द्वारा निर्णय न होने पर संघ समूह ने निर्णय लिया कि इस पर्वत की रक्षिका देवी जो निर्णय दे वही सर्वमान्य होगा। तब कुन्दकुन्दाचार्य ने अपने मंत्र बल से गिरनार पर्वत पर सरस्वती देवी को आमंत्रित किया, उसने दिगम्बर संप्रदाय की प्राचीनता सिद्ध की। सभी ने उनके निर्णय को स्वीकारा और दिगम्बर संघ ने सर्वप्रथम यात्रा की।

मीठो-मीठो बोल

मीठो-मीठो बोल थारो काँई बिगड़े।
काँई बिगड़े थारो काँई बिगड़े।।
वीरा-वीरा बोल थारो काँई बिगड़े।
काँई बिगड़े थारो काँई बिगड़े।।
आ जीवन मा दम नहीं।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल.....।।
सोच समझ ले स्वारथ रो संसार।
लाख जतन कर छूटेला घर बार।।
तू जान ले पहचान ले मारी मान ले।
संसार किसी का घर नहीं।।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल.....।।
युग-युग से गुरु कहते बारंबार।
एक बार तू कर ले मन में विचार।।
तू चेत जा, तू जान जा, पहचान जा।
संसार किसी का घर नहीं।।
कब निकले प्राण मालूम नहीं।।
मीठो-मीठो बोल.....।।

- उपयोग की भूमिका में राग-द्वेष का उत्पन्न न होना ही सही स्वाध्याय/ निश्चय स्वाध्याय है
- समता ही परम ध्यान है। शास्त्रों का विस्तार समता की प्राप्ति के लिए ही है।

सामायिक पाठ

प्रेम भाव हो सब जीवों से, गुणीजनों में हर्ष प्रभो।
करुणा स्रोत बहे दुखियों पर, दुर्जन में मध्यस्थ विभो।।१।।
यह अनन्त बल शील आत्मा, हो शरीर से भिन्न प्रभो।
ज्यों होती तलवार म्यान से, वह अनन्त बल दो मुझको।।२।।
सुख-दुख बैरी-बन्धु वर्ग में, काँच कनक में समता हो।
वन-उपवन प्रासाद कुटी में नहीं खेद, नहिं ममता हो।।३।।
जिस सुन्दरतम पथ पर चलकर, जीते मोह मान मन्मथ।
वह सुन्दर पथ ही प्रभु मेरा, बना रहे अनुशीलन पथ ।।४।।
एकेन्द्रिय आदिक प्राणी की यदि मैंने हिंसा की हो।
शुद्ध हृदय से कहता हूँ वह, निष्फल हो दुष्कृत्य विभो।।५।।
मोक्ष मार्ग प्रतिकूल प्रवर्तन जो कुछ किया कषायों से।
विपथ गमन सब कालुष मेरे, मिट जावें सद्भावों से।।६।।
चतुर वैद्य विष विक्षत करता, त्यों प्रभु मैं भी आदि उपान्त।
अपनी निन्दा आलोचन से करता हूँ पापों को शान्त।।७।।
सत्य अहिंसादिक व्रत में भी मैंने हृदय मलीन किया।
व्रत विपरीत प्रवर्तन करके शीलाचरण विलीन किया।।८।।
कभी वासना की सरिता का, गहन सलिल मुझ पर छाया।
पी-पीकर विषयों की मदिरा मुझ में पागलपन आया।।९।।
मैंने छली और मायावी हो, असत्य आचरण किया।
परनिन्दा गाली चुगली जो मुँह पर आया वमन किया।।१०।।
निरभिमान उज्ज्वल मानस हो, सदा सत्य का ध्यान रहे।
निर्मल जल की सरिता सदृश, हिय में निर्मल ज्ञान बहे।।११।।
मुनि चक्री शक्री के हिय में, जिस अनन्त का ध्यान रहे।
गाते वेद पुराण जिसे वह, परम देव मम हृदय रहे।।१२।।
दर्शन ज्ञान स्वभावी जिसने, सब विकार ही वमन किये।
परम ध्यान गोचर परमातम, परम देव मम हृदय रहें।।१३।।
जो भव दुख का विध्वंसक है, विश्व विलोकी जिसका ज्ञान।
योगी जन के ध्यान गम्य वह, बसे हृदय में देव महान्।।१४।।
मुक्ति मार्ग का दिग्दर्शक है, जनम-मरण से परम अतीत।
निष्कलंक त्रैलोक्य दर्शी वह देव रहे मम हृदय समीप।।१५।।
निखिल विश्व के वशीकरण वे, राग रहे न द्वेष रहे।
शुद्ध अतीन्द्रिय ज्ञान स्वभावी, परम देव मम हृदय रहे।।१६।।
देख रहा जो निखिल विश्व को कर्म कलंक विहीन विचित्र।
स्वच्छ विनिर्मल निर्विकार वह देव करें मम हृदय पवित्र।।१७।।
कर्म कलंक अछूत न जिसको कभी छू सके दिव्य प्रकाश।
मोह तिमिर को भेद चला जो परम शरण मुझको वह आप्त।।१८।।
जिसकी दिव्य ज्योति के आगे, फीका पड़ता सूर्य प्रकाश।
स्वयं ज्ञानमय स्व-पर प्रकाशी, परम शरण मुझको वह आप्त।।१९।।
जिसके ज्ञान रूप दर्पण में, स्पष्ट झलकते सभी पदार्थ।
आदि अन्तसे रहित शान्तशिव, परम शरण मुझको वह आप्त।।२०।।
जैसे अग्नि जलाती तरु को, तैसे नष्ट हुए स्वयमेव।
भय विषाद चिन्ता नहीं जिनको, परम शरण मुझको वह देव।।२१।।
तृण, चौकी, शिल, शैलशिखर नहीं, आत्म समाधि के आसन।
संस्तर, पूजा, संघ-सम्मिलन, नहीं समाधि के साधन।।२२।।
इष्ट वियोग अनिष्ट योग में, विश्व मनाता है मातम।
हेय सभी हैं विषय वासना, उपादेय निर्मल आतम।।२३।।
बाह्य जगत कुछ भी नहीं मेरा, और न बाह्य जगत का मैं।
यह निश्चय कर छोड़ बाह्य को, मुक्ति हेतु नित स्वस्थ रमें।।२४।।
अपनी निधि तो अपने में है, बाह्य वस्तु में व्यर्थ प्रयास।
जग का सुख तो मृग तृष्णा है, झूठे हैं उसके पुरुषार्थ।।२५।।
अक्षय है शाश्वत है आत्मा, निर्मल ज्ञान स्वभावी है।
जो कुछ बाहर है, सब पर है, कर्माधीन विनाशी है।।२६।।
तन से जिसका ऐक्य नहीं हो, सुत, तिय, मित्रों से कैसे।
चर्म दूर होने पर तन से, रोम समूह रहे कैसे।।२७।।
महा कष्ट पाता जो करता, पर-पदार्थ, जड़-देह संयोग।
मोक्ष महल का पथ है सीधा, जड़-चेतन का पूर्ण वियोग।।२८।।
जो संसार पतन के कारण, उन विकल्प जालों को छोड़।
निर्विकल्प निर्द्वन्द आत्मा, फिर-फिर लीन उसी में हो।।२९।।
स्वयं किए जो कर्म शुभाशुभ, फल निश्चय ही वे देते।
करे आप, फल देय अन्य तो स्वयं किए निष्फल होते।।३०।।
अपने कर्म सिवाय जीव को, कोई न फल देता कुछ भी।
'पर देता है' यह विचार तज स्थिर हो, छोड़ प्रमादी बुद्धि।।३१।।
निर्मल, सत्य, शिवं सुन्दर है, 'अमित गति' वह देव महान्।
शाश्वत निज में अनुभव करते, पाते निर्मल पद निर्वाण।।३२।।

इन बत्तीस पदों से जो कोई, परमातम को ध्याते हैं।
साँची सामायिक को पाकर, भवोदधि तर जाते हैं।।

.....

जीवन की सफलता इसमें है कि किसी की गुलामी किए बिना जीवन बिताए। पराधीन को जीवित कहें तो फिर मृतक कौन है?

कुन्दकुन्द के समयसार का सार हमें जो बता रहे।
समन्तभद्र-सा डंका घर-घर द्वार-द्वार जो बजा रहे।।
भोले-भाले जन को हैं जो चलते-फिरते धाम।
ऐसे गुरु विद्यासिन्धु को मेरा शत-शत बार प्रणाम।।

सच्चा मित्र कौन

एक दिन राजा ने अपने बेटे राजकुमार को मन्त्रियों के माध्यम से यह आदेश कहलवाया कि राजकुमार हमारे देश से निकल जाए। और देश की प्रजा को भी यह आदेश दे दिया कि कोई भी राजकुमार को शरण नहीं देगा, जो शरण देगा उसे राज दण्ड दिया जाएगा।

राजकुमार ने विचार किया ऐसे संकट के समय अपने मित्रों के पास जाना चाहिए। राजकुमार के तीन मित्र थे। पहले मित्र का नाम नित्य मित्र, दूसरे मित्र का नाम पर्व मित्र एवं तीसरे मित्र का नाम नमस्कार मित्र था। नित्यमित्र प्रतिदिन राजकुमार के राज्य में आता-जाता था। इसलिए राजकुमार उसे सम्मान की दृष्टि से देखता था। सहयोग देता था। खान-पान भी साथ करता था। गुप्त से गुप्त बात के लिए भी पर्दा नहीं था। पर्व मित्र विशेष पर्वों में राजकुमार से मिलने आता था। भोजन कर वापस चला जाता। नमस्कार मित्र जब कभी मार्ग में मुलाकात हो जाती तो राजकुमार से नमस्कार कर लेता था।

राजकुमार सर्वप्रथम नित्य-मित्र के घर पहुँचा तो मित्र ने देखते ही अपने घर के दरवाजे बन्द कर लिए। राजकुमार को बहुत बुरा लगा। राजकुमार पर्व-मित्र के पास पहुँचा, उसे अपनी कहानी सुनाई तो मित्र ने कहा राजकुमार आप तो नाश्ता-पानी करो और जाओ क्योंकि आप जानते हैं मेरे छोटे-छोटे बच्चे हैं कहीं राजा ने दण्ड दे दिया तो इन बच्चों का क्या होगा! अब राजकुमार सीधे नमस्कार मित्र के पास गया उसने प्रारम्भ से अन्त तक अपनी सारी कहानी सुना दी। मित्र कहता आखिर आपकी गलती क्या हुई? राजकुमार कहता यह तो मुझे भी ज्ञात नहीं है। नमस्कार मित्र कहता है आओ पहले भोजन करो फिर जो होगा देखा जाएगा। दोनों भोजन करके उठते ही हैं कि राजा के सिपाही आ जाते हैं और नमस्कार मित्र से कहते हैं आपने राजकुमार को शरण दी है अतः आप दोनों राजा के पास चलें। राजा के सामने नमस्कार मित्र को पेश किया, राजा कहता है आपने इसे शरण क्यों दी? नमस्कार मित्र कहता पहले आप यह बताइए कि राजकुमार से क्या अपराध हुआ? राजा नमस्कार मित्र से कहता इसका अपराध कुछ भी नहीं है। मैं तो यह परीक्षा कर रहा था कि राजकुमार का सच्चा मित्र कौन है। अब मुझे ज्ञात हो गया कि तुम इसके सच्चे मित्र हो। अतः राजकुमार को राजा और तुम्हें मन्त्री पद दिया जाता है और मैं संन्यास धारण करने जा रहा हूँ।

यह तो दृष्टान्त है, भाव यह है कि विद्वानों ने इस शरीर को नित्य मित्र कहा है जिसकी हम दिन-रात सेवा करते हैं फिर भी बुढ़ापे में दगा दे जाता है। परिवार को पर्व-मित्र कहा है जो थोड़ी-बहुत सहायता करते रहते हैं। तथा धर्म को नमस्कार मित्र कहा है। दुःख में, सुख में तथा परलोक में भी सच्चा साथी धर्म ही होता है। अतः हर व्यक्ति को धर्म, नमस्कार-मित्र पर ही विश्वास रखना चाहिए यही सच्चा मित्र है।

शिक्षा- संकट के समय ही मित्र की पहचान होती है, स्वार्थी मित्र संकट के समय दूर हो जाते हैं, अतः ऐसे मित्रों से बचना चाहिए। जो संकट में सहायता करे वही सच्चा मित्र है अतः उसी से मित्रता करनी चाहिए।

श्री विद्यासागर विनम्र

श्री विद्यासागर विनम्र वे चरण हाँ विनम्र वे चरण
इन्हें नमन ...२, इनको शत्-शत् नमन ...२
बड़े भाग्य से तो दर्श मिलता है
किस्मत ही वालों को मिलता है...२
जिस धरा पर पग पड़े वो
तीर्थ से न कम, हाँ वो तीर्थ से न कम
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर .... ॥१॥

वीतराग भेष देखो अचम्भा
चांद-सूरज भी करते परिकम्मा
ऐसे साधु हमको मिले रात दिन हां मिले रात-दिन
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर .... ॥२॥

ज्ञान के हैं सूर्य प्यारे गुरुजी
छवि ऐसी है जैसे प्रभुजी
जिन्हें देख कर मन हो गया प्रसन्न
हां-हां हो गया प्रसन्न,
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर .... ॥३॥

शुभ घड़ी आज ऐसी आई है
गुरू की कृपा दृष्टि छाई है
आज मेरा जीवन हो गया है धन्य
हां-हां हो गया है धन्य,
इन्हें नमन...२, इनको शत्-शत् नमन
श्री विद्यासागर .... ॥४॥